शायरी के संग ***रमेश तैलंग*** *के संग*

आज बस इतना ही

रमेश तैलंग

अनुष्टुप प्रकाशन
जयपुर

शायरी के रंग रमेश तैलंग के संग

आज बस इतना ही
लेखक : रमेश तैलंग

© लेखकाधीन
संस्करण/प्रथम/2020

ISBN : 978-81-942259-4-2

आवरण : दर्पण गोस्वामी

प्रकाशक
अनुष्टुप् प्रकाशन
13, गायत्री नगर, सोडाला, जयपुर-302006
फोन : 0141-2450971, मो. 9414440997
ईमेल : anushtupprakashan@gmail.com

मुद्रक
टेक्नाक्रेट प्रिन्टर्स प्रा. लि.
एफ-24, करतारपुरा इन्डस्ट्रियल एरिया, जयपुर-302015

मूल्य : ₹ 150.00

हमसफर कमलेश के लिए

अनुक्रम : पृष्ठ

- आत्मकथ्य / 1-2
- अभिमत / 3-4
- अन्तर्भाव / 5-8

01/चंद अल्फ़ाज़ भर की ज़िंदगी हमारी है / 09
02/हो सके तो ज़िंदगी को शायरी कर दे खुदा !/ 10
03/तेरी मर्ज़ी के बिना पत्ता नहीं हिलता है / 11
04/हवा में, धूप में, मिट्टी में और पानी में /12
05/दीवारों के बीच कहीं पर एक झरोखा रखना / 13
06/मेरे दुखों के साथ उसके भी दु:ख साथ रहे / 14
07/कभी अब्र बन के बरस गए / 15
08/वो जिस मक़ाम पे तारीक़ की हद टूटेगी / 16
09/उड़ने का हुनर आया जब हमें गुमां न था / 17
10/यादों के ख़ज़ाने में कितने लोग भरे है / 18
11/किसी के जाने से दुनिया ख़तम नहीं होती / 19
12/डूब जाने को कई बार मन मचलता है / 20
13/बातों-बातों में बतियाते कट जाएंगे गर्दिश के दिन /21
14/पिछले दिनों जो घट गया, वो घट गया, अब भूल जा / 22
15/मिट्टी के घरोंदों में तिज़ोरी नहीं होती / 23
16/क़मबख़्त सियासत हमें एक पल नहीं भाती / 24
17/बच्चों पर दिन भारी देखे /25
18/हमारी चाहतें पग-पग पे पीछा करती हैं / 26
19/ये कैसी दुनिया बच्चों की बना दी हमने / 27
20/हवा शिकार पे निकली है करके तैयारी / 28
21/लफ़्ज़ों का इस्तेमाल एहतियात से करें / 29
22/अपने क़द से बड़ा जब कोई नज़र आने लगे / 30
23/ज़ुबाने थक गई होगी जरा आभास करने दो / 31
24/जब कुछ नहीं बना तो हमने इतना कर दिया / 32
25/मेरे ज़ज़्बात में जब भी कभी थोड़ा उबाल आया / 33
26/जहाँ उम्मीद थी ज्यादा वहाँ से खाली हाथ आए / 34
27/किसी को ज़िंदगी में जानना आसां नहीं होता / 35

28/दु:ख दर्द की मिठास को खारा नहीं बना / 36
29/आसमान की ऊँचाई पा कर भी बादल रोता है / 37
30/तसल्लियां ही झूठी दे के न बहलाया करो / 38
31/नीम कटा जबसे आँगन का, आँगन नहीं रहा / 39
32/दुनिया में अब सारे रिश्ते, सारे नाते पैसों के / 40
33/न कोई ख़त, न कोई मेरा पता रखा है / 41
34/एक बेल रोशनी की जब से चढी है छत पर / 42
35/जिससे थोड़ा लगाव होने लगा / 43
36/वो कहीं जा के बसा हो, मेरी चाहत में है / 44
37/बड़े दिनों के बाद मिले हो, थोड़ी देर तो ठहरो ना / 45
38/फिर शिकन आ गई पेशानी पर / 46
39/न आह पे रोते हैं और न वाह पे हँसते / 47
40/तारीख, दिन, औ साल कौन याद रखे अब / 48
41/न जाने कितने लोग ज़िन्दगी में आते हैं / 49
42/सब कुछ अपने मन का ही हो ऐसा कब होता है / 50
43/एक क़िताब पड़ी थी अलमारी में कई महीने से / 51
44/कहने के लिए एक अदद जुबान चाहिए / 52
45/वो जहाँ होगा मचायेगा वहाँ पर शोर ही / 53
46/ये क्या जुनून है, तू रोज सुबह उठता है / 54
47/सच कहा साहित्य से रोटी नहीं चलती / 55
48/वह कहता था, वह शब्दों की खेती करता है / 56
49/साठ-सत्तर फीसदी दर पर खरीदी जाएँगी / 57
50/कुछ ख़्वाब थे आँखों में, अधूरे ही रह गए / 58
51/दरिंदगी में जिन्हें बेटी, बहन, माँ न लगे / 59
52/ठिठुरती ठण्ड में स्कूल बसों से बच्चे / 60
53/दिल के रिश्ते गाढे हों और बोलाचाली बनी रहे / 61
54/ज़माना क्यों उदास है, सितार बजने दो / 62
55/मुँदी हुई आँखें, उड़ी हुई नींदें, और तेरा खयाल / 63
56/क़द्र की क़द्र करने वाले हों / 64
57/खुशी से अपनी जाँघ कौन यूँ उघाड़ता है / 65
58/ख़्वाबों का हश्र टूटना है तो / 66
59/हम पके पात हैं कल गिरना हमारा तय है / 67
60/ख़बर नहीं ये, जो पढ़ते ही बासी हो जाए / 68

61/इस तरह मिल कि ये दिल बाग़-बाग़ हो जाए / 69
62/हर एक सवाल का उत्तर हो, जरूरी तो नही / 70
63/ये माना, उनमें बड़ी जान हुआ करती है / 71
64/हौसले जितने बड़े हैं, साज़िशें उनसे बड़ी / 72
65/दिल का दरिया उछालें भरने लगा / 73
66/जरा सी आँच लगी बर्फ पानी होने लगी / 74
67/जिस दिन तुमसे बिछुड़ के आए / 75
68/ये नज़्म, ये गज़ल, ये गीत सिर्फ बहाना है / 76
69/चल दिए हाथ छुड़ाकर, सभी जाने वाले / 77
70/दिलों के रास्ते दिन-रात बंद कर के लोग / 78
71/भले दो जून की हमें न रोटी देते हैं / 79
72/सुनामी जब भी आती है तबाही छोड़ जाती है / 80
73/इमारत ऊँची होते ही उजाला रोक लेती / 81
74/उसकी मौज़ूदगी में ताज़गी-सी लगती है / 82
75/तेरी मासूमियत विपदा में जब आती मेरी बच्ची ! / 83
76/मेरे बारे में उसने जाने क्या-क्या सोचा है / 84
77/गुनाह एक का, इल्ज़ाम क़ौम पर आए / 85
78/कल की बरसात ने भिगो डाला / 86
79/शिखर पे जाते ही ढलान शुरू होती है / 87
80/जुबानें जिनकी मीठी हैं, उन्हीं को मुँह लगाते हैं / 88
81/धुंध में जब कहीं कुछ भी नज़र नहीं आता / 89
82/जानता हूँ कि उम्र थोड़ी है / 90
83/गुलों ने कुछ नया करने की अग़र ठानी है / 91
84/रीति-रिवाज पुराने अब भी निभा रही है माँ / 92
85/नदी के भाग बदलेंगे, बड़ा अच्छा इरादा है / 93
86/किसी भी काम में अब मन नहीं लगता / 94
87/कुरेद देता हूं तो एक पल भभकती हैं / 95
88/ज़बान किसकी है, अल्फ़ाज़ किसके हैं, बतला / 96
89/तुम कहो जो, ग़र वही सच है / 97
90/हम ढूँढते रहते हैं कहाँ बुरा हुआ है / 98

ये क्या ज़ुनून है

2010 के दशक में जब मैं पहली बार आभासी दुनिया से जुड़ा तो मन में जहाँ एक ओर इस दुनिया के नकलीपन का अहसास था तो दूसरी ओर यह विश्वास भी था कि इस दुनिया में जिन पुराने नए–दोस्तों से मैं संवाद कर रहा हूँ वे काल्पनिक नहीं बल्कि हाड़–मांस से बने असली इंसान हैं और रचनात्मक स्तर पर उनकी हर प्रतिक्रिया मेरे लिए बहुत मायने रखती है, तो इस तरह दोस्तों ! फेसबुक पर मेरा रचनात्मक सिलसिला शुरु हुआ जो कुछ समय तक एक ज़ुनून की हद तक चलता गया –

ये क्या ज़ुनून है तू रोज़ सुबह उठता है
जुलाहा बनकर फिर तानाबाना बुनता है

इस तरह हर दिन/आये दिन कुछ नए शे'र/नई शायरी लेकर मैं अपनी प्रोफाइल वाल पर उपस्थित हो जाता यह जानते हुए भी कि–

किसको फ़ुरसत है तेरी बात रोज सुनता रहे
सबको हर दिन लगे हैं अपने अपने काम यहाँ
फिर भी तू बोलता रहता है पागलों की तरह
ख़ब्त क्या पाल लिया तूने सुबह शाम यहाँ

पर ज़ुनून तो ज़ुनून है. मैं जो भी लिखता उस पर प्रबुद्ध मित्रों, अदीबों, कलाकारों की जब स्नेहिल प्रतिक्रियाएँ मुझे मिलतीं, तो बहुत अच्छा लगता। कभी किसी दिन नागा हो जाता तो मणिका मोहिनी जैसी वरिष्ठ लेखिका/संपादक का उलाहना आ जाता, क्या हुआ ? चुप्पी कैसे धार ली ? और उसका असर यह होता कि गाड़ी दोबारा चल पड़ती।

सच कहूँ तो शायरी मेरी रचनात्मकता का पहला हिस्सा कभी नहीं रही। मेरी शुरुआत तो बाल साहित्य से हुई, जो सिलसिला अभी भी जारी है। कभी कभार बड़ों का साहित्य भी रच लिया पर शायरी का जन्म जहाँ तक मुझे याद है, फेसबुक की दुनिया में ही हुआ। फेसबुक पर हर दिन जो भी मैं लिखता था उसे मुकम्मल ग़ज़ल का नाम देना तो मेरे लिए अपराध ही होगा। उर्दू में ग़ज़ल की जो समृद्ध परंपरा रही है, जो उसका संरचनात्मक अनुशासन है उसे निभाना मेरे जैसे

नौसिखिये के लिए क़तई संभव नहीं था और न ही मैंने कभी हिंदी की श्रेष्ठ ग़ज़ल लिखने वालों में शामिल होने का मुग़ालता पाला, पर अपनी सारी कमियों के बावज़ूद बीते वर्षों में मेरे अन्दर जो उबल रहा था उसे अभिव्यक्ति देने का सिलसिला नहीं छूटा। मेरी इस अनगढ़ कोशिश का एक छोटा-सा नमूना *आज बस इतना ही* संग्रह है।

मेरी इस रचनात्मक कोशिश को जिन लोगों ने सराहा और प्रोत्साहन दिया उनमें बहुत से नाम हैं- सर्वश्री वीरेन्द्र जैन, राधेश्याम बन्धु, डॉ. प्रकाश मनु, देवेन्द्र कुमार, डॉ. भैरुलाल गर्ग, एस. पी. सुधेश, प्रत्यूष गुलेरी, सुश्री मणिका मोहिनी, आशा शुक्ला, डॉ. हेमंत कुमार, पुलकित कुमार मंडल, हरि नारायण त्रिवेदी, अरुण बाली (एक्टर), जगदीश किंजल्क, रंजन ज़ैदी, पलाश सुरजन, भानु भारवि, हेमंत शेष, अशोक आत्रेय, वेद प्रकाश बटुक...आदि की एक लम्बी सूची है आगे, इन सभी को मेरा सादर नमन/अभिवादन !

अधिक क्या कहूँ, बस इतना कहकर यह संग्रह आप सुधीजनों के हाथों में सौंपता हूँ कि आभासी दुनिया में, माना कि, बहुत कुछ नकली है, झूठ है, पर इसी दुनिया में बहुत कुछ ऐसा भी है जो आपको-हमें रचनात्मक और भावनात्मक स्तर पर ऊर्जावान बनाता है और यह कहने का साहस प्रदान करता है -

मैं कतरा हूँ, मुझे मालूम है हक़ीक़त लेकिन
जिग़र मैं अपना समंदर से बड़ा रखता हूँ

रमेश तैलंग

फ्लैट नं. 101, संकल्प बिल्डिंग,
प्लॉट नं. 50, अरिहन्त कृपा के पास,
खार घर, नवी मुम्बई-410210, मो. 9211688748
email: rtailang@gmail-com

अभी लिखने के लिए बहुत बाकी है.

मुझे श्री रमेश तैलंग जी की कृति *आज बस इतना ही* को प्रकाशन से पूर्व पढ़ने का सौभाग्य मिला। उनकी अनेक ग़ज़लें फेसबुक पर पोस्ट होती रही थीं जिनके कई शे'र मुझे पसन्द आये थे। वहाँ मैंने तत्काल अपने भावों को प्रकट करने में संकोच नहीं किया था। यही कारण रहा कि श्री तैलंग जी ने यह अवसर दिया।

मैं कोई समीक्षक नहीं केवल पाठक हूँ और कविता पसन्द आने पर मुँह से वाह वाह करने का हक रखता हूँ। एक पाठक होने के नाते ही कह सकता हूँ कि उक्त संकलन में प्रकाशित श्री तैलंग की काव्य रचनाएँ उर्दू की परम्परा की ग़ज़लें नहीं हैं। वे उस अनुशासन से मुक्त होकर अपनी संवेदनाओं को ग़ज़ल से मिलते-जुलते रूप में व्यक्त करते हैं और यही महत्वपूर्ण है। यही कविता की आत्मा होती है, जो उसके रूप से ज्यादा महत्वपूर्ण है। श्री भानु भारवि पुस्तक की भूमिका में अपने गम्भीर विचार दे ही चुके हैं इसलिए मैं अपनी शुभकामनाएँ इस पुस्तक की कुछ पंक्तियों को रेखांकित करते हुए देना चाहता हूँ। हर रचनाकार की प्रकट या अप्रकट राजनीति होती है, जो उसकी रचनाओं में सूँघी जा सकती है।

जो ज़ुल्म सह के भी चुप हैं, ये भूल मत जाना
कि उनके मुँह में भी जबान हुआ करती है।
वो दूसरों का दर्द अपना ही समझते हैं
अदीबों की यही पह्चान हुआ करती है। (63)

***

घुटने ही टेक दे जो सियासत के सामने,
अपने अदब को इतना बिचारा नहीं बना। (28)

***

ऐसी दुनिया का क्या करे जिसमें
आँख पर पर्दे, मुँह पे ताले हों। (56)

***

सोचता हूँ क्या करेगा आदमी बाज़ार में
जब सभी संवेदनाएँ ज़ब्त कर ली जाएँगी. (49)

***

चमक-दमक से भरी द्वारिकाएँ तो दिखती हैं,
दूर-दूर तक पर कोई वृन्दावन नहीं रहा. (31)

***

बदली हुकूमतें मगर न किस्मतें बदलीं,
मुश्किलज़दा लोगों को सबने दर बदर किया (24)

***

मुल्क़ को मिल्क़ीयत बनने में पल नहीं लगता,
अवाम को अगर बेवक्त नींद आने लगे (22)

***

हवा शिकार पे निकली है करके तैयारी
दबाए रखना जहाँ भी कही हों चिंगारी. (20)

***

जो आचार-संहिता लाए, उनमें ही व्यभिचारी देखे,
संत:पुर में अन्त:पुर थे, दशमुख रूप हजारी देखे. (17)

श्री तैलंग जी की और और बेहतर कृतियों की प्रतीक्षा रहेगी।

वीरेन्द्र जैन

2/1 शालीमार स्टर्लिंग रायसेन रोड,
अप्सरा टाकीज के पास भोपाल,
मध्य प्रदेश, 462023
मो. 9425674629

अन्तर्भाव

शेष कल के लिए

भारतीय साहित्य में काव्य विधा का प्रादुर्भाव ईसा से लगभग 5 शती पूर्व हो चुका था जब महर्षि वाल्मीकि के श्रीमुख से सर्वथा पहले अनुष्टुप् ने जन्म लिया था। यह संस्कृत साहित्य का पहला पद्य (श्लोक) माना गया। भारत में ग़ज़ल का उद्भव सूफ़ी सन्तों व शायरों के माध्यम से 12 वीं सदी में हुआ माना जाता है। उर्दू साहित्य में कविता के– ग़ज़ल, हम्द, मन्क़बात, नज़्म, रुबाई, कसीदा, मर्सिया, मसनबी आदि कई शिल्प रहे हैं। इनमें ग़ज़ल, रुबाई और नज़्म विधाएँ सर्वाधिक प्रचलित रहीं, लिखीं, पढ़ीं व सुनी गईं। हिन्दी साहित्य में ग़ज़ल के प्रणेता दुष्यन्त कुमार त्यागी उर्फ़ दुष्यन्त कुमार (1933–1975) को मानते हैं। उन्होंने अपनी 42 साल की अल्पायु में ही हिन्दी ग़ज़ल को वो संस्थापना दी कि आज हिन्दी में ग़ज़ल कहने वाले शायरों की संख्या में गुणात्मक इज़ाफा हुआ और उन्होंने इस विधा को एक नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया।

हिन्दी के शायरों ने ग़जल को उर्दू शायरी की शास्त्रीयता के प्रतिबन्धों से मुक्त करने में अहम् भूमिका निभाई। हिन्दी ग़ज़ल ने प्रणय, प्रेयसी, नारी सौन्दर्य, वियोग, ग़म, सुरा आदि से परे हट कर सामाजिक विसंगतियों, शासकीय दुर्नीतियों, मानवीय संत्रास, उत्पीड़न आदि जीवनानुभूतियों की गहन संवेदनाओं की ओर रुख किया। ग़ज़ल के इस वैषयिक बदलाव की बदौलत इसके कथ्य और शिल्प दोनों में बदलाव आना लाज़िमी ही था। ग़ज़ल में स्थानिकता का भी गहरा प्रभाव पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि ग़ज़ल में उर्दू मिश्रित हिन्दी या हिन्दी मिश्रित उर्दू का प्रयोग किया जाने लगा।

अस्तु, इसी विधा पर एक अरसे से सृजनरत सुविद् ग़ज़ल–शिल्पी एवं बाल साहित्यकार श्री रमेश तैलंग अपने ताज़ातरीन संकलन *आज बस इतना ही* को लेकर समकालीन ग़ज़लनवीसों व सुधी ग़ज़ल–रसिकों से रुबरु हो रहे हैं।

संकलन का *आज बस इतना ही* शीर्षक कई मायनों में हमें नई–नई विश्लेषणाओं की ओर ले जाता है। यहाँ हमारे ज़ेहन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि आख़िर कवि ने 'आज' जबकि काल का चक्र निरंतर संचरित है, तो वह 'बस इतना ही' कह कर थमने का निर्देशन क्यों कर रहा है ? इसका सहज उत्तर यह है कि ऐसा कह कर वह सृष्टि और मानव की शाश्वतता का

समर्थन करता है। वह सृष्टि, संघर्ष व सृजन की इयत्ता में साम्य पाता है। ये उपागम काल एवं काल के किसी अंश से प्रतिबन्धित भी नहीं होते। कवि यह भी नहीं चाहता है कि व्यक्ति अपनी अकूत सामर्थ्य का इतना दोहन न करले कि भविष्य में करने को उसके पास न सामर्थ्य बचे, न साधन। हो सकता है वह *आज बस इतना ही* कह कर, थमने की बजाय विश्राम के लिए कह रहा हो और जो क्षय हुआ है, उसे पुनरार्जित कर पुन: सन्नद्ध होने का निर्देशन कर रहा हो।

इस शीर्षक को यदि हम ध्वन्यात्मक रूप में परिभाषित करें तो यह कहा जाना सर्वथा सार्थक और तार्किक होगा कि कवि 'शेष कल के लिए' सुरक्षित रख लेना चाहता है ताकि, वह नए भाव-सामर्थ्य, नए शक्ति-संचय के साथ अपने लक्ष्यों का संधान कर सके :-

जुबानें थक गई होंगी जरा आराम करने दो
उन्हें देखा, इन्हें भी देख लेंगे, काम करने दो (23)

इस दृष्टि से इस संकलन की ग़ज़लें मनुष्य को जीवन की आपाधापी और तमाम ऊहापोह से मुक्त रख कर नई ताक़त के साथ अनवरत संचरण का सन्देश देती हैं। इनकी ग़ज़लों में सादगी है। कवि को छीजते हुए मानवीय रिश्तों के प्रति गहरी खीज है, जब वह रिश्तों में बनावटीपन व उससे निपजे कसैलेपन का अनुभव करता है तो वह खुदा से पारस्परिक रिश्तों की एक ऐसी परिभाषा रचने की गुजारिश करता है, जिसकी खुशबू से समाज की यह बासी बगिया महकने लगे :-

क्या करेंगे सिर्फ़ दीवारें या छत लेकर यहाँ
हो सके तो एक मुक़म्मल छोटा-सा घर दे दे ख़ुदा (02)

***

ग़ैरों की मोहब्बत ने बचाए रखा हमको
अपनों के सहारे तो हम ज़िन्दा भी नहीं रहते (39)

उनकी ग़ज़लों को हौसलों में संभावनाओं की गहरी तलाश है। कवि *हौसले जितने बड़े है, साजिशें उनसे बड़ी* (64) कह कर साजिशों को बड़ी मानता है तो दूसरी ओर वह *जुटा के हौसला निकली है नीड़ के बाहर, वो चिड़िया, देखना, अब आसमान छू लेगी* (08) कह कर उसका ठोस प्रतिकार भी करता है। इस प्रकार वह साज़िशों को गुरुतर बता कर उसी के मुक़ाबिल हौंसले क़ायम रखने के लिए प्रेरित भी करता है।

वे जीवन संदर्भों से जुड़ी सच्चाई को विरल व्यँजनाओं के साथ उठाते हैं। उनकी ग़ज़लों में आज की सियासत व सियासतदानों के नैतिक क्षरण की क़रीबी पड़ताल है और ये उनके फरेबों को सिरे से नकारती हैं। इन सियासतदानों के कभी पूरे न होने वाले भरोसों से ये नाइत्तफ़ाकी रखती है तो उनकी इस निष्फलता को सीधे-सीधे प्रश्नित भी करती है:-

सितारे फूल हैं फलक के, खुशी देते हैं
सितारों से किसी का पेट कहाँ भरता है (12)

***

कम्बख़्त सियासत हमें एक पल नहीं भाती
कंकड़ की तरह दाल में वो आ ही है जाती
उस पुलिया का इतिहास अज़ीबोग़रीब है
हर साल वो बनती है और टूट भी जाती (16)

कवि सियासत की बेवफ़ाई और फ़रेब का एक ओर चेहरा हमारे सामने लाता है। वह सियासत की बेएतबारी व मौक़ापरस्ती को निम्न शे'र में बेवाकी के साथ व्यक्त करता है, मुलाहिज़ा करें :-

ये सियासत है, यहाँ सबकी चाहते हैं बड़ी
किसे पता है कौन कब किसे धकियाने लगे (22)

इन ग़ज़लों का समवेत स्वर आघातों से आहत समाज की व्यथा है। एक ऐसी व्यथा जो उसकी चेतना शक्ति को खंडित कर रही है। वह मानव जीवन के बरास्ते गुजरने वाले हर घात-प्रतिघात से बाबस्ता रहता है। रमेशजी की ग़ज़लें लोक की सामान्य प्रवृत्तियों में से विकृतियों का सहज ही में शोधन कर लेती हैं। तभी तो उनकी ग़ज़लों में एकाकीपन, सूनापन, दुश्वारियाँ, अनिच्छा, हताशा के भाव बार-बार आते हैं। इस सबके बावज़ूद कवि गतिरोधों से टकराहट को ही जीवन की संभावना का नाम देता है। कहते हैं कमजोर और अक्षम व्यक्ति में समर्थ और सक्षम व्यक्ति की अपेक्षा आक्रोश की गहनता व सघनता तीव्र होती है। ऐसे में लेखक भी दलित, पीड़ित, शोषित वर्ग में इंक़लाब के उद्‌भव-सूत्र की विश्लेषणा प्रतिपादित करता है :-

देख लो इतिहास का पन्ना कोई भी खोल कर
इंक़लाबी पहला होगा बस कोई कमजोर ही (45)

रमेशजी बाल साहित्य के अग्रणी सर्जक रहे हैं। बाल मनोविज्ञान व बाल विमर्श पर केन्द्रित वे अब तक लगभग एक दर्जन से भी अधिक पुस्तकों का प्रणयन कर चुके हैं। इसके लिए उन्हें अनेक संस्थाओं ने सम्मानित भी किया है। ऐसे में वे ग़ज़ल में भी बाल-विमर्श जैसे अनिवार्य विषय से कैसे असम्पृक्त रह सकते थे। यहाँ भी बाल शोषण और अबोध बालिकाओं पर होने वाले अनैतिक दुराचारों के ख़िलाफ़ वे चुप नहीं रह पाए हैं। इस विषय पर भी आपने ग़ज़ल के माध्यम से इन पाशविक व दानवीय व्यवहारों पर मारक प्रहार भी किया है। वे कहते हैं :-

दरिंदगी में जिन्हें बेटी, बहन, माँ न लगे
है बददुआ उन्हें, कभी कोई दुआ न लगे (51)

***

तेरी मासूमियत विपदा में जब आती मेरी बच्ची
धरा पाताल में क्यों धँस नहीं जाती मेरी बच्ची (75)

बच्चों को सुसंस्कारित करने के दायित्व के प्रति सामाजिक उदासीनता पर भी वे व्यथित होते हैं। उनका कहना है माता-पिता बच्चों को स्थानिकता व संस्कृति से नहीं जोड़ते जिसके कारण वे अपनी नैसर्गिक मासूमियत से परे हटने लगते हैं और आगे चल कर उनमें विस्फोटक उच्छृंखलता पनपने लगती है। इस प्रकार वे न समाज के और न ही देश के सभ्य नागरिक बन पाते हैं। समाज की इसी अनदेखी पर इनका एक शे'र यहाँ दृष्टव्य है :-

ये कैसी दुनिया बच्चों की बना दी हमने
खिलौनों की जगह बन्दूक थमा दी हमने
उनकी मासूमियत इतना बड़ा गुनाह न थी
कि उनको इतनी खौफ़नाक सजा दी हमने (19)

इस संग्रह की कुल सत्यासी ग़ज़लों में कवि ने मानवीय जीवन की इयत्ता को हर कोणों से परखा है, जो मेरे जैसे अकिंचन द्वारा इस महान लेखकीय मनीषा को संवार पाना 'प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहु वामन' की तरह लग रहा है। 'शेष कल के लिए' कहते हुए क्षमायाचना के साथ श्री रमेश तैलंग का यह सारस्वत सृजन सुधी पाठकों की सेवामें अर्पित करता हूँ। आशा है, सुधी पाठक इनकी ग़ज़लों को सम्पूर्ण एकाग्रता के साथ पढ़ेंगे, सुनेंगे, गुनेंगे व सराहेंगे भी।

भानु भारवि

'अनुष्टुप्' 13 गायत्री नगर, सोडाला, जयपुर-302006,
मो. 9414440997

एक

चंद अल्फ़ाज़ भर की ज़िंदगी हमारी है,
इनसे ही दुश्मनी है, इनसे ही अब यारी है.
हर सुबह-शाम कर्ज़ इनका ही चुकाता हूँ,
क्या करूँ, इनसे सात जन्मों की उधारी है.
अब इसे, आप की मर्ज़ी है, नाम जो भी दें,
शौक है, ख़ब्त है या सिर्फ़ मगज़मारी है.
दिल में जो होता है वो सामने रख देता हूँ,
थोड़ी-सी ज़िद है और थोड़ी दुनियादारी है.
भले शऊर, सलीका नहीं है कहने का,
मगर मुआफ़ी मांगने की तो हक़दारी है.
किसे पता ये मुलाक़ात फिरसे हो न हो,
आने के साथ-साथ, जाने की तैयारी है.

दो

हो सके तो ज़िंदगी को शायरी कर दे खुदा,
शायरी में ज़िंदगी के रंग सब भर दे खुदा।
और कुछ चाहे भले ही दे, न दे, मर्ज़ी तेरी,
ज़िंदगी को जीने लायक तो मुकद्दर दे खुदा।
क्या करेंगे सिर्फ़ दीवारें, या छत लेकर यहाँ,
हो सके तो एक मुक़म्मल छोटा-सा घर दे दे खुदा।
दिल के हिस्से में छलकता एक दरिया डाल दे,
फिर समूचे ज़िस्म को चाहे तो संग कर दे खुदा।
चैन दिन का, रात की नींदें उड़ा कर ले गया,
खौफ़ की आँखों में भी थोड़ा-सा डर भर दे खुदा।
सर कलम करने को बैठे हैं यहां आमादा जो,
उनका बस एक बार ही सज़दे में सर कर दे खुदा।

तीन

तेरी मर्ज़ी के बिना पत्ता नहीं हिलता है,
मंज़िलें क्या हैं, रास्ता भी नहीं मिलता है.
हजार कोशिशें कर ले बहार, पर फिर भी,
नूर तेरा न हो तो फूल नहीं खिलता है.
तेरी रहमत से चकना-चूर होते देखा है,
दुःख का पर्वत जो हिलाए से नहीं हिलता है.
तेरे वुज़ूद पर यकीं नहीं होता जिसको,
वो हठी दरिया भी जाकर तुझी में मिलता है.
तू मेरी माँ की तरह है, जो मेरी आँखों में,
उधड़ते ख़्वाबों को तरतीबवार सिलता है.

चार

हवा में, धूप में, मिट्टी में और पानी में,
तेरी मौज़ूदगी दिखती है हर निशानी में.
तू मेरा रहनुमा नहीं तो बता फिर क्या है,
हर कदम साथ है तू भीड़ में, वीरानी में.
एक तू ही तो है जो मुझको याद आता है,
हर मुसीबत में, दुःख में, और परेशानी में.
जो तुझसे दूर हैं वो भी हैं तुझसे दूर कहाँ,
जमीं, फलक सभी हैं तेरी निग़हबानी में.
न सही रोशनी, महक तो तेरी ज़िंदा है,
मेरी इन डूबती सांसों की धूपदानी में.
हर एक लम्हे को ज़िंदादिली से जीता रहूँ,
और क्या करना है छोटी-सी ज़िंदगानी में.

पांच

दीवारों के बीच कहीं पर एक झरोखा रखना,

कभी-कभी इंसानों की तरह भी सोचा करना।

बुरे वक़्त की यादें आ कर सिर्फ़ रुलाएँगी ही,

बहुत दिनों तक सीने पर न बोझ ग़मों का रखना।

सीधे सच्चे लोग बहुत ही ज़ज्बाती होते हैं,

उनसे जब भी करना कोई सच्चा सौदा करना।

तेरी मिट्टी में मेरी मिट्टी की भी खुशबू है,

मुमकिन कैसे हो पायेगा उसे अलहदा रखना।

पूछेगा कल तुझसे भी इतिहास सवाल अनेकों,

सौ पर्दों में भी ज़मीर अपना बेपर्दा रखना।

छह

मेरे दुःखों के साथ उसके भी दुःख साथ रहे,
दाहिने हाथ के संग जैसे बायाँ हाथ रहे।
मेरा हर अश्क़ हथेली पे उसने थाम लिया,
ये कैसे कह दूँ कि आँसू मेरे अनाथ रहे।
ये सच है ज़िंदगी में ऐसे कई पल आए,
पास होते हुए भी हम न साथ-साथ रहे।
बड़ी तकलीफ़ भी तक़लीफ़ सी नहीं लगती,
रंज में जब किसी का अपने सर पे हाथ रहे।
मौत भी ज़िंदगी के साथ-साथ चलती रही,
सोच कर तन्हा सफ़र में तो कोई साथ रहे।

सात

कभी अब्र बन के बरस गए, कभी धूप बन के बिखर गए,
वो अज़ीब किस्म के लोग थे जो मिले तो दिल में उतर गए।

उन्हें फ़ुर्सतों की कमी न थी, उन्हें चाह कोई बड़ी न थी,
रखा हाथ सर पे तो यूँ लगा जैसे बोझ सारे उतर गए।

वो फ़कीर हो के अमीर थे, वो ग़मों में सबके शरीक़ थे,
वहीं चार महफ़िलें जोड़लीं, जहाँ चार पल को ठहर गए।

भले कितनी थी दुश्वारियाँ, नहीं तोड़ीं यारों से यारियाँ,
वहीं बन गए नए रास्ते, वो जिधर-जिधर से गुज़र गए।

वो नज़र से दूर जो जा बसे, तो हमारी यादों में आ बसे,
वो अभी थे आँखों के सामने, वो अभी-अभी लो, किधर गए।

आठ

वो जिस मक़ाम पे तारीक़ की हद टूटेगी,
वहीं से, हाँ, वहीं से रौशनी कल फूटेगी।
नसीब में अगर तूफ़ाँ हैं, वो भी आएँगे,
ख़ुदा है साथ तो बस कश्ती नहीं डूबेगी।
किसी के दिन कभी भी एक से नहीं रहते,
यक़ीन इसका तेरी ख़ुद की आरज़ू देगी।
लिखी है जिसने मौहब्बत दिलों की पट्टी पर,
तू भूल जा उसे, ये दुनिया नहीं भूलेगी।
जुटा के हौंसला निकली है नीड़ के बाहर,
वो चिड़िया, देखना, अब आसमान छू लेगी।

नौ

उड़ने का हुनर आया जब हमें गुमां न था,
हिस्से में परिंदों के कोई आसमाँ न था।
ऐसा नहीं कि ख़्वाहिशें नहीं थी हमारी,
पर उनका सरपरस्त कोई मेहरबाँ न था।
एक ख़्वाब क़त्ल करके, एक ख़्वाब बचाते,
अपने ज़िगर में ऐसा बड़ा सूरमा न था।
तन्हा सफ़र में इसलिए तन्हा ही रह गए,
थे रास्ते बहुत से, मगर कारवाँ न था।
परदेस गए बच्चे तो वहीं के हो गए,
इस देस में हुनर तो था पर क़द्रदाँ न था।

दस

यादों के ख़ज़ाने में कितने लोग भरे हैं,
बिछुड़े हैं जब से हर घड़ी बेचैन करे हैं.
तस्वीरों के अंदर भी वे ज़िंदा-से लगे हैं,
और हम हैं कि उनके बिना ज़िंदा भी मरे हैं.
इस झूठे भरम में कि वे कल लौट आएँगे,
सीने पे कब से सब्र का एक बोझ धरे हैं.
एक और सियाही है तो एक और रोशनी,
अपने ही साये से ड्यौं हर वक़्त डरे हैं.
थमता नहीं सैलाब, आँधियों में मोह की,
तर आस्तीं है, आँसुओं के मोती झरे हैं.

ग्यारह

किसी के जाने से दुनिया ख़तम नहीं होती,
मग़र जो पहले थी दुनिया वही नहीं होती।
हर एक कोना दिल का खाली नज़र आता है,
ये कौन कहता है कोई कमी नहीं होती।
जो शख़्सीयत किसी की ज़िन्दगी हो, जाने पर,
वो कुछ भी हो फ़क़त एक याद भर नहीं होती।
कि अपनी आँखों के आँसू भी न बुझा पाएँ,
लबों पे इस कदर तो तश्नगी नहीं होती।
सभी हदों को तोड़ कर जब टूटता है सब्र,
ये ज़िन्दगी भी जैसे ज़िन्दगी नहीं होती।

बारह

डूब जाने को कई बार मन मचलता है,
चाहने से भी मगर कौन यहाँ मरता है.
ज़िन्दगी इसलिये हर रोज़ जिये जाते हैं,
न चुकाओ तो कर्ज़ और ज्यादा बढ़ता है.
कभी बेचैनी में आँखों की नींद उड़ती है,
तो कभी रंज में दामन सुलगने लगता है.
सितारे फूल हैं फलक के, खुशी देते हैं,
सितारों से किसी का पेट कहाँ भरता है.
जरा सी बात है, दिल को समझ नहीं आती,
पुराने ज़ख़्म को भरने में वक़्त लगता है.

तेरह

बातों-बातों में बतियाते कट जाएँगे ग़र्दिश के दिन,
घटती चंद्रकला की मानिंद घट जाएँगे ग़र्दिश के दिन।
ज्यादा से ज्यादा क्या लेंगे, दुःख देना है, तो दुःख देंगे,
देते-देते आखिर एक दिन थक जाएँगे ग़र्दिश के दिन।
ठौर नहीं हैं उनका कोई तो अपना भी ठौर नहीं है,
साथ हमारे कहीं सड़क पर पड़ जाएँगे ग़र्दिश के दिन।
उनकी भी एक लाचारी है, अपनी भी एक लाचारी है,
किस मुँह से पूँछें, आते ही कब जाएँगे ग़र्दिश के दिन।
पाहुन बन कर आए हैं तो आवभगत करनी ही होगी,
वरना क्या सोचेंगे, वापस जब जाएँगे ग़र्दिश के दिन।

चौदह

पिछले दिनों जो घट गया, वो घट गया, अब भूल जा,

वो वक़्त जैसा भी था आख़िर कट गया, अब भूल जा।

वो आँधियों का दौर था, पत्ता भी तब सिरमौर था,

सीने पे रख कर पाँव, बादल छँट गया, अब भूल जा।

समता का कब वो युद्ध था, हर शख़्स तेरे विरुद्ध था,

खाकर थपेड़े हाथ से जो तट गया, अब भूल जा।

सच से बड़ा हर झूठ था, लड़ता भी तो तू टूटता,

अच्छा हुआ जो रास्ते से हट गया, अब भूल जा।

इस हार का भी रंग है, जीवन का ये भी अंग है,

ये सच है कि थोड़ा-बहुत जीवट गया, अब भूल जा।

पन्द्रह

मिट्टी के घरौंदों में तिजोरी नहीं होती,

दरवाज़े खुले हों जहाँ, चोरी नहीं होती।

जो प्यास बुझा लेते हैं अंजलि को बाँधकर,

उनके यहाँ चांदी की कटोरी नहीं होती।

थोड़ा-सा मुफ़लिसों को भी गुरूर है नसीब,

हर वक़्त उनके मुँह पे चिरौरी नहीं होती।

महलों की सड़ाधें, जरा सोचो, कहाँ जातीं,

जुड़वाँ गली के बीच जो मोरी नहीं होती।

कूड़े में खेलकर बड़ा होता है जो बचपन,

उसकी सियाह रातों में लोरी नहीं होती।

आते हैं जहाँ पंछियों की तरह रोज दुःख,

खुशियों की वहाँ पर ज़माख़ोरी नहीं होती।

सोलह

क़मबख़्त सियासत हमें एक पल नहीं भाती,
कंकड़ की तरह दाल में वो आ ही है जाती।
उस पुलिया का इतिहास अज़ीबोग़रीब है,
हर साल वो बनती है और टूट भी जाती।
एक योजना में रोजगार तो मिला सबको,
तनख़्वाह मगर उनकी महीनों नहीं आती।
रो-रो के बार-बार अब तो थक गई आँखें,
आँसू की नदी आज सूख क्यों नहीं जाती।
अब हमसे अपना दर्द भी बयाँ नहीं होता,
अब हमसे अपनी बात भी कही नहीं जाती।
हाक़िम भी उन्हीं के हैं, कानून भी उनके,
फिर भी सुना है रात उन्हें नींद नहीं आती।

सत्रह

बच्चों पर दिन भारी देखे,

हर दिन कांड निठारी देखे।

मासूमों का सौदा करते,

बड़े-बड़े व्यापारी देखे।

जो आचार-संहिता लाए,

उनमें ही व्यभिचारी देखे।

संतःपुर में अन्तःपुर थे,

दशमुख रूप हजारी देखे।

उतरी जितनी बार नकाबें,

लम्पट रासबिहारी देखे।

जिन्हें देखना कभी न चाहा,

बदक़िस्मती हमारी, देखे।

अठारह

हमारी चाहतें पग-पग पै पीछा करती हैं,
रुला दें जब कभी, दामन को गीला करती हैं.
ये जानते हुए, हर ख़्वाब सच नहीं होता,
हमारी आँखें रोज़ ख़्वाब बीना करती हैं.
लहूलुहान हो चुकी हैं अंगुलियाँ फिर भी,
वो आसमान के दिल पर कशीदा करती हैं.
ये कैसी नफ़रतें है लोगों के सीने में, जो,
बसी-बसाई बस्तियों को वीराँ करती हैं.
जरूर दुश्मनी है मुझसे तल्ख़ियों की कोई,
वो जब भी आती हैं, दुश्वार जीना करती हैं.
हमारी ज़िंदगी जब छीन न पाई हमसे,
तो बदहवास हो के खुशियाँ छीना करती हैं.

उन्नीस

ये कैसी दुनिया बच्चों की बना दी हमने,
खिलौनों की जगह बन्दूक थमा दी हमने।
उनकी मासूमियत इतना बड़ा गुनाह न थी,
कि उनको इतनी खौफ़नाक सजा दी हमने।
होनी तो चाहिए थी मखमली चादर नीचे,
उनके पांवों तले बारूद बिछादी हमने।
सारा बचपन ही राख हो गया जलते-जलते,
एक चिंगारी को ये कैसी हवा दी हमने।
नन्हीं किलकारियाँ चीखों में जहाँ ढ़लती हैं,
वहाँ तारों की बड़ी बाड़ लगा दी हमने।
तुम्हीं कहो कि किसके आगे अब रोना रोएँ,
कि अपने आप अपनी दुनिया लुटा दी हमने।

बीस

हवा शिकार पे निकली है करके तैयारी,
दबाए रखना जहाँ भी हो कहीं चिंगारी।
ये सोच कर अभी घटेगा कुछ जरूर यहाँ,
इकठ्ठा हो गई है टीम मीडिया सारी।
न जाने क्यों मुझे अनिष्ट से डर लगता है,
गुजर गया है दिन तो, रात पड़ी है भारी।
ये हादसों को भी मनमाने भाव बेचते हैं,
ये कोई आम तरह के नहीं है व्यापारी।
जो दावा करते हैं हर बार सच बताने का,
उन्हें छुपाने की है अंदरूनी बीमारी।
कहाँ बुझाएँगे अब प्यास गले की जा कर,
यहाँ थी मीठी नदी वो भी हो गई खारी।

इक्कीस

लफ़्ज़ों का इस्तेमाल एहतियात से करें,
अब फ़ैसला न कोई भी ज़ज़्बात से करें.

करना ही ज़रूरी है अगर बात तो पहले,
समझौता आस-पास के हालात से करें.

वो चाहते हैं पूरी बहस मुल्क भर में हो,
शुरुआत किस तरह के सवालात से करें.

दिल और दिमाग दोनों जंग पे हैं उतारू,
कोशिश, कहो तो, पहली, हवालात से करें.

ये ज़िंदगी ही पूरी एक बवाल बन गई,
अब तू बता, गिला क्या क़ायनात से करें.

औलों की मार सह गई शाखें, तो बूँदों की,
किस मुँह से अब शिकायत बरसात से करें.

सीने में सियासत ने जगह सब्र की ले ली,
अब आख़िरी है चाल ख़त्म मात से करें.

बाईस

अपने क़द से बड़ा जब कोई नज़र आने लगे,
तो हर सवाल क्यों न अपना सिर उठाने लगे।
ये सियासत है, यहाँ सबकी चाहतें हैं बड़ी,
किसे पता है कौन कब किसे धकियाने लगे।
अभी तो पहली ही अजान सुनाई दी है,
उठा के हाथ सब खुदा ! खुदा ! चिल्लाने लगे।
अज़ीब हड़बड़ी में लोग यहाँ रहते हैं,
भरोसा देने से पहले ही आज़माने लगे।
हमारे हिस्से की भी धूप रोक ली सारी,
घरों के ठीक सामने ही शामियाने लगे।
हसीन ख़्वाबों को ये शक़्ल कौन सी दे दी,
जो शर्म देख ले तो उसको शर्म आने लगे।
मुल्क़ को मिल्क़ीयत बनने में पल नहीं लगता,
अवाम को अगर बेवक़्त नींद आने लगे।

तेबीस

ज़ुबानें थक गई होंगी जरा आराम करने दो,
उन्हें देखा, इन्हें भी देख लेंगे, काम करने दो।
फिज़ाँ बदली है तो अब तौर तरीके भी बदलेंगे,
अभी तक थे जो ख़ासमख़ास उनको आम करने दो।
ये बेचैनी भी ऐसी क्या, ये बेताबी भी ऐसी क्या,
सफ़र लम्बा है, सूरज को सुबह से शाम करने दो।
हर एक आगाज़ अच्छा ही लगा करता है आँखों को,
उम्मीदों का तकाज़ा है जरा अंजाम करने दो।
पराजय और विजय दोनों ही हिस्सा हैं समर के पर,
किसी की बेबसी को न अभी नीलाम करने दो।
अगर जो ढूँढने हैं आपने अपने हल सवालों के,
ज़ुबाँ की हर वसीयत आँसुओं के नाम करने दो।

चौबीस

जब कुछ नहीं बना तो हमने इतना कर दिया,
खाली हथेली पर दुआ का सिक्का धर दिया।
कब तक निभाते दुश्मनी हम वक़्त से हर दिन,
इस बार जब मिला वो तो बांहों में भर लिया।
उस गाँव के बाशिंदों में अज़ीब रस्म है,
बच्ची के जन्म लेते ही गाते हैं मर्सिया।
बदली हुकूमतें मग़र न किस्मतें बदलीं,
मुश्किलज़दा लोगों को सबने दर बदर किया।
मुद्दा कोई हो, उसपे बोलना तो बहुत दूर,
संजीदा हो के सोचना भी बंद कर दिया।

पच्चीस

मैंरे ज़ज़्बात मैं जब भी कभी थोड़ा उबाल आया,
कभी बच्चों की चिंता तो कभी घर का ख़्याल आया।
पुरानी बंदिशें थीं या पुरानी रंज़िशें थी वो,
मेरी पूंजी का हिस्सा थीं, करीने से संभाल आया।
इसे हालात से समझौता करना, चाहो तो कह लो,
जगी मरने की ख़्वाहिश तो उसे भी कल पे टाल आया।
मैं ऐसा हूँ तो क्यों ऐसा ही हूँ, हर पल मेरे आगे,
पलट कर बारहा वो ही पुराना-सा सवाल आया।
किसी को चाहा तो अच्छा-बुरा कुछ भी नहीं देखा,
बड़ी मुश्क़िल से अपनी ज़िन्दगी में ये कमाल आया।

छब्बीस

जहाँ उम्मीद थी ज्यादा वहाँ से खाली हाथ आए,
बबूलों से बुरे निकले तेरे गुलमोहर के साए।
मैं अपनी दास्ताँ तुझको सुनाता किस तरह बोलो,
कलेजा मुँह को आया और कभी आँसू निकल आए।
उदासी है कि पीछा छोड़ती ही है नहीं मेरा,
कोई बैठा रहे कब तक दुआ में हाथ फैलाए।
सुबह से काम पर निकला है बेटा, और माँ का मन,
हिलोरें ले रहा है, लौट कर वो ज़ल्दी घर आए।
किसी चेहरे को पढ़ना है अग़र तो ग़ौर से पढ़ना,
कहीं ऐसा न हो सहरा भी दरिया-सा नज़र आए।
हजारों लम्हे जी कर ज़िन्दगी का ये मिला हासिल,
तसल्ली से न जी पाए, तसल्ली से न मर पाए।

सत्ताईस

किसी को ज़िंदगी में जानना आसाँ नहीं होता,
नज़र आता है जो जैसा कभी वैसा नहीं होता।
बड़ी रौशन निगाहें भी यहाँ रखा जाती हैं धोखा,
सुनहरी देह वाला सिक्का हर सोना नहीं होता।
उजाले की जहाँ मौज़ूदगी थोड़ी-सी होती है,
वहाँ साया भी अपने आप में तन्हा नहीं होता।
हजारों जानवर सोते हैं एक इंसान के भीतर,
कोई भी जाग जाए तो वो फिर इंसाँ नहीं होता।
कई शक्लों में आती है मुसीबत इम्तहाँ लेने,
बरसती है जहाँ रहमत, चमन वीराँ नहीं होता।
जरा सोचो ये दुनिया कितनी बदसूरत नज़र आती,
अगर बच्चों की आँखों में कोई सपना नहीं होता।

अट्ठाईस

दुःख दर्द की मिठास को खारा नहीं बना,
ख़ामोशी को ज़ुबान दे, नारा नहीं बना।
जिसने ज़मीन से लिया है खाद औ' पानी,
उस ख़्वाब को फलक का सितारा नहीं बना।
वो बेज़ुबाँ है पर तेरी जागीर तो नहीं,
उसको, शिकार के लिए, चारा नहीं बना।
घुटने ही टेक दे जो सियासत के सामने,
अपने अदब को इतना बिचारा नहीं बना।
ज़ज़्बात कोई खेल दिखाने का फ़न नहीं,
ज़ज़्बात को जादू का पिटारा नहीं बना।
इंसान की फ़ितरत तो है शबनम की तरह ही,
अब उसको, ज़ुल्म कर के, अंगारा नहीं बना।

उनतीस

आसमान की ऊँचाई पा कर भी बादल रोता है,
अपने हिस्से का दुःख आख़िर सबको सहना होता है.
औरों की बातें तो केवल बातें ही रह जाती हैं,
तन्हाई में अपना सीना, अपना बोझा होता है.
पेड़ हरा हो जब तक, पँछी नीड़ बसाने आते हैं,
और ठूँठ हो जाए तो पत्ता भी वैरी होता है.
सपनों की दुनिया कितनी भी सुंदर क्यों न हो लेकिन,
सपनों का आँखों से रिश्ता पल-दो-पल का होता है.
कभी-कभी ऐसा भी वक़्त गुज़रता है अपने पर जब,
रूह कहीं पर होती है और ज़िस्म कहीं पर होता है.

तीस

तसल्लियां ही झूठी दे के न बहलाया करो,
ये चोट खाया दिल है, इस पे तरस खाया करो।
ये क्या कि धूप की तरह जलाते रहते हो,
कभी तो अब्र बन के हम पे बरस जाया करो।
सुबह से शाम, शाम से सुबह, तन्हाई है,
ज़रा सा वक़्त मेरे साथ भी बिताया करो।
ये चटके आईने, ये अक़्स बिखरे-बिखरे से,
नज़ारा ये भी कभी देखने को आया करो।
हमें तो हो गई आदत फ़रेब खाने की,
ये दुनिया क्या है, अब हमें नहीं समझाया करो।
तुम्हारा एक भी ख़त भूल से नहीं आता,
कसम से, कोई एक वादा तो निभाया करो।

इकतीस

नीम कटा जबसे आँगन का, आँगन नहीं रहा,
जैसे सूना भाल, भाल पर चंदन नहीं रहा।
दुःख में जिससे लिपट-लिपट कर हम रो लेते थे,
बारहमासी में अब वो ही सावन नहीं रहा।
आठों पहर उड़ा करती है धूल यहाँ, जबसे,
अंबर की आँखों में श्यामल अंजन नहीं रहा।
इस बस्ती में क्या पूछो, हम कैसे जीते हैं,
अपनों में भी अब जैसे अपनापन नहीं रहा।
चमक-दमक से भरी द्वारिकाएँ तो दिखती हैं,
दूर-दूर तक पर कोई वृन्दावन नहीं रहा।

बत्तीस

दुनिया में अब सारे रिश्ते, सारे नाते पैसों के,
इस मंडी में सबसे नीचे भाव गिरे हम जैसों के.
सन्नाटा बुनती रातों को कौन पूछता मैले में,
चर्चे रहे, गुलाबी शामों, बेईमान सबेरों के.
सौंप दिया उनके हाथों में जबसे अपना मुस्तक़बिल,
हाल बुरे हो गये और भी अपनी ख़स्ता जेबों के.
बचपन की मुस्कान छीन ली कुछ गुमनाम अंधेरों ने,
दिन लद गये काम की धुन में उछलकूद के, खेलों के.
इंसानी पागलपन की हद है, मारक उपकरणों से,
भाग्य बदलने चला है देखो चिड़िया रैन बसेरों के.

तैंतीस

न कोई ख़त, न कोई मेरा पता रखा है,
मगर उसने अभी एक रिश्ता बना रखा है.
दोस्ती थी तो मेरा नाम नहीं लेता था,
दुश्मनी है तो मुझे दिल में बसा रखा है.
दीन दुनिया की ख़बर यूँ तो अब नहीं मुझको,
पर तेरे होने का एहसास बचा रखा है.
जानता तो हूँ मग़र उससे कभी पूछा नहीं,
क्यों मेरा नाम कलाई पे गुदा रखा है.
मैंने यह सोच के हर चीज वहीं रहने दी,
वो कल न पूछ ले, आईना कहाँ रखा है.
यूँ तो रूमानी हुए हमको जमाना गुजरा,
फिर भी एक बादल आँखों में छुपा रखा है.

चौंतीस

एक बेल रौशनी की जब से चढ़ी है छत पर,
छत ले रही बलैयां बाहों में उसे भर-भर।
कोई खुशी अचानक उतरी है आसमां से,
बच्चे के हाथ आए जैसे पतंग कट कर।
ढ़लते ही शाम सूनी देहरी के भाग जागे,
कोई अभी गया है नन्हा-सा दीप रख कर।
ओ चांद, मेरे वीरा, अब तो ज़रा बता दे,
मेले में खो गया तू हमसे कहाँ बिछड़ कर।
दरवाज़ा खोले चौपट है नाच रही बिटिया,
आएँगी लच्छमी घर, आएँगी लच्छमी घर।

पैंतीस

जिससे थोड़ा लगाव होने लगा,
बस, उसी का अभाव होने लगा।
ये नियति का ही तो करिश्मा है,
ज़िंदा सच एक ख़्वाब होने लगा।
गर्म बाज़ार हुआ रिश्तों का,
हर तरफ़ मोल-भाव होने लगा।
ज़िस्मौज़ाँ एक थे जो कल, उनमें,
आज खुल कर हिसाब होने लगा।
पहले होता था सिर्फ़ किश्तों में,
दर्द अब बेहिसाब होने लगा।
या तो हम ही बहुत खराब हुए,
या जमाना खराब होने लगा।

छतीस

वो कहीं जा के बसा हो, मेरी चाहत में है,
वो यहाँ हो कि वहाँ हो, मेरी चाहत में हैं.
मिलना-जुलना तो है नसीब की बात,
वो मिला हो, न मिला हो, मेरी चाहत में हैं.
दूरियाँ, फ़ासिले, भरम झूठे,
दिल का एक तार जुड़ा हो, मेरी चाहत में है.
वो है हर हाल में मुझे मंज़ूर,
वो भला हो या बुरा हो, मेरी चाहत में है.
जगमगाहट से भरा बैठा हूँ,
चाहे मिट्टी का दिया हो, मेरी चाहत में है.

सैंतीस

बड़े दिनों के बाद मिले हो, थोड़ी देर तो ठहरो ना,
कितनी बातें हैं कहने-सुनने को, कह लो-सुन लो ना।
कब से रोके हैं उफान पर चढ़ी नदी के जल को हम,
टूट गए तटबंध अगर तो फिर क्या होगा, सोचो ना।
कितनी सुबहें, कितनी शामें, कितने दिन, कितनी रातें,
चुप्पा-चुप्पी मैं ही अब तक बीत गए सब, देखो ना।
अब ये खेल ख़त्म हो जाए, जी कुछ तो हल्का हो जाए,
बिजली हो तो गिरो चमक कर, बादल हो तो बरसो ना।

अड़तीस

फिर शिकन आ गई पेशानी पर,
आग की पर्त जैसे पानी पर।
ये मेरे दुःख हैं, तेरा खेल नहीं,
देख, इनसे न छेड़खानी कर।
मैं परेशाँ नहीं, बस हैराँ हूँ,
इस ज़माने की क़द्रदानी पर।
सच कहूँ तो यकीं नहीं करते,
लोग खुश होते हैं कहानी पर।
एक दहशत सी बनी रहती है,
सीधी-सादी सी ज़िंदगानी पर।
मेरा इंसान ही न मर जाए,
ऐ खुदा! इतनी मेहरबानी कर।

उनतालीस

न आह पे रोते हैं और न वाह पे हँसते,
मिलते हैं यूँ भी लोग सरेराह गुज़रते।
दुश्वारियों के बीच पता चलता है सब का,
आसानियों में रिश्ते क़रीबी नहीं बनते।
ग़ैरों की मोहब्बत ने बचाए रखा हमको,
अपनों के सहारे तो हम ज़िंदा भी न रहते।
तक़लीफ़ बाँटने को ज़रूरी है, कोई हो,
सीने में दिल न होता तो किससे भला कहते।
ठोकर का क्या है, यूँ ही लग जाती है, लेकिन,
एक उम्र गुज़र जाती है संभलते-संभलते।
ये चाँद है जो दिन में भी आ जाता है नज़र,
देखा नहीं है रात में सूरज को निकलते।
जो थे बहुत अज़ीज़ हमें, दूर चल दिए,
ये ज़िंदगी के फ़ासले क्यूँकर नहीं घटते।

चालीस

तारीख, दिन, औ' साल कौन याद रखे अब,

हर लम्हा सौ सवाल कौन याद रखे अब।

उलझी हुई है ज़िन्दगी कुछ ऐसी आजकल,

क्या हाल क्या बदहाल कौन याद रखे अब।

बादल को बरसना था बरस कर चला गया,

टूटे हुए तिरपाल, कौन याद रखे अब।

अपने दुःखों से हम तो निहत्थे ही लड़े हैं,

तलवार कहाँ ढाल, कौन याद रखे अब।

दुनिया बदल गई तो लोग भी बदल गए,

बदले हुए सुर, ताल कौन याद रखे अब।

इकतालीस

न जाने कितने लोग ज़िन्दगी में आते हैं,
बहुत ही कम हैं जो दिल में जगह बनाते हैं.
ये आईने दबी यादों की तरह होते हैं,
ज़रा सा छेड़ो, उन पे नक़्श उभर आते हैं.
उम्मीदें जब भी एक साथ टूटा करती हैं,
क़रीबी लोगों के एहसान याद आते हैं.
बहुत ही प्यार से पालो जिन्हें इन आँखों में,
वही अधूरे ख़्वाब नींदें उड़ा जाते हैं.
किसी पे इतना भी भरोसा करना ठीक नहीं,
जो थामते हैं हाथ, क़श्ती डुबो जाते हैं.
कभी देखे कोई आकर हमारी भी कुव्वत,
कितने सैलाब रोज सीने में दबाते हैं.
तुम एक मौत का हिसाब करने आए हो,
हजारों मौतें एक पल में हम मर जाते हैं.

बियालीस

सब कुछ अपने मन का ही हो ऐसा कब होता है,
मतिरोधों से टकरा कर जीवन संभव होता है.
पलकों तक आए और मन में हलचल पैदा नहीं करे,
ऐसा आँसू जिंदा हो कर भी एक शव होता है.
एकाकी लोगों से पूछो तो शायद यह पता चले,
सूनेपन के अंदर-अंदर भी कलरव होता है.
भली-भली बातों से कोई अच्छी कथा नहीं बनती,
श्याम रंग का श्वेतों में गहरा मतलब होता है.

तिंयालीस

एक क़िताब पड़ी थी अलमारी में कई महीने से,
मुद्दत बाद मिली तो रोई लिपट-लिपट कर सीने से.
कहा सुबकते हुए-'निर्दयी' अब आए हो मिलने को,
जब गाढ़े संबंधों के आवरण हो गए झीने से.
और ज़रा देखो, कैसे बेनूर हो गए ये अक्षर,
कभी चमकते थे जो अँगूठी में जड़े नगीने से.
और याद है ? जब आँखें भारी होते ही यहाँ-वहाँ,
सो जाते तुम मुझे सिरहाने रखकर बेडे करीने से.
किस मुँह से अब अपना ये सर्वस्व सौंप दूँ फिर तुमको,
धूल धूसरित देह पड़ी है लथपथ आज पसीने से.

चवांलीस

कहने के लिए एक अदद ज़ुबान चाहिए,
सुनने के लिए फिर दो अदद कान चाहिए।
ये गुफ़्तगू करना कोई आसान नहीं है,
इसके लिए भी थोड़ा इत्मीनान चाहिए।
दो जून की रोटी नहीं ईमान से मिलती,
धंधे के लिए उनको बेईमान चाहिए।
जनता का तो पता नहीं क्या चाहिए उसे,
नेताओं को कमज़ोर संविधान चाहिए।
तक़लीफ़ हमारी जो हमारी तरह समझे,
भगवानों की दुनिया में एक इंसान चाहिए।

पैंतालीस

वो जहाँ होगा मचायेगा वहाँ पर शोर ही,
रोशनी को खींच कर लाएगा कोई और ही।
देख लो इतिहास का पन्ना कोई भी खोल कर,
इंक़लाबी पहला होगा बस कोई कमज़ोर ही।
रहनुमाई में रखा है मुझको जब से आपने,
जानलेवा लग रहा है अपने मुँह का कौर ही।
वो तरक्की क्या सँवारेगी हमारी ज़िन्दगी,
जो हमें लगती रही ताउम्र आदमख़ोर ही।

छियालीस

ये क्या जुनून है, तू रोज सुबह उठता है,
जुलाहा बन कर, फिर ताना-बाना बुनता है.
सभी हैं मस्त यहाँ अपने-अपने धंधों में,
बता, है कौन, जो तेरी कहानी सुनता है.
उतार फेंक ये झूठे भरम का पहरन अब,
जो नंगे पाँव में शीशे की तरह चुभता है.
भला वो रोशनी को कितनी देर थामेगा,
हवाओं में जो चिराग़ बार-बार बुझता है.
नए ज़माने के तालीमशुदा लोग हैं ये,
तेरी ये साफ़गोई इनके लिए नुक़्ता है.

सैंतालीस

सच कहा साहित्य से रोटी नहीं चलती,
क्या करूँ, मन पर ज़बरदस्ती नहीं चलती।
ज़िन्दगी में दुःख लिखे हैं तो चलो ये ही सही,
ज़िन्दगी में हर समय मस्ती नहीं चलती।
वो नदी हो, या समंदर, पर सुना, हमने यही,
हौंसलें टूटे हों तो कश्ती नहीं चलती।
शौंक से पाला है जिसने भी जुनूँ फ़नकारी का,
उसके पेशे में कभी जल्दी नहीं चलती।
जिसको जो देना था उसने वो खुशी से दे दिया,
उसके आगे आपकी मर्ज़ी नहीं चलती।

अड़तालीस

वह कहता था, वह शब्दों की खेती करता है,
और ज़िन्दगी जीते-जीते, पल-पल मरता है.
ख़ुद्दारी पहचान बनी जब से उसकी, तब से,
हर आईना उससे नज़र मिलाते डरता है.
अस्पताल में एक दिन शैया पर वह पड़ा हुआ,
लगा पूछने-'खोटा सिक्का' कब तक चलता है.
उसको अक्सर ही दौरे आते थे अज़ाब-अज़ाब,
जिन्हें ज़माना बहुत बड़ा पागलपन कहता है.
बुरे वक़्त में एक कलम की पूँजी थी उसकी,
पास अदीबों के इससे ज्यादा क्या रहता है.

उनचास

साठ-सत्तर फीसदी दर पर खरीदी जाएँगी,
और फिर ताबूतों में सब बंद कर दी जाएँगी।
वाह री किस्मत, किताबें हिंदी में साहित्य की,
अब दहाई में बड़ी मुश्किल से बेचीं जाएँगी।
ज़िन्दगी अपनी खपा कर चल दिए लिख-लिख के जो,
ख़्वाहिशें उनकी सुना है बस अधूरी जाएँगी।
चार, छह तमगे, समोसे, चाय और कुछ तालियाँ,
लेखकों के साथ अब ये चंद चीजें जाएँगी।
सोचता हूँ, क्या करेगा आदमी बाज़ार में,
जब सभी संवेदनाएँ ज़ब्त कर ली जाएँगी।

पचास

कुछ ख़्वाब थे आँखों में, अधूरे ही रह गए,
सुर न मिला तो मौन तमूरे ही रह गए.
बाज़ीगरी का फ़न न जिन्हें रास आ सका,
वे ज़िन्दगी में सिर्फ़ जमूरे ही रह गए.
सिर पर उठाया मैल जिन्होंने समाज का,
ताउम्र वे समाज में घूरे ही रह गए.
दुःख-दर्द पै पहले तो किताबें लिखी गईं,
फिर बाद में किताबों के चूरे ही रह गए.
अधनंगों की किस्मत में और कुछ नहीं बचा,
बस काटने को कान-खजूरे ही रह गए.

इक्यावन

दरिंदगी में जिन्हें बेटी, बहन, माँ न लगे,
है बददुआ उन्हें, कभी कोई दुआ न लगे।
ज़िस्म को लाश, और रूह को पत्थर कर दे,
किसी को ज़िन्दगी में ऐसा भी सदमा न लगे।
अभी-अभी रखा है देहरी के बाहर एक चराग,
मैं हूँ दहशत में इसे ख़ल्क की हवा न लगे।
तेरे निज़ाम की नीयत पे अब यक़ीन नहीं,
मेरा ये दर्द कहीं तुझको बेज़ुबाँ न लगे।
खुदा के सामने देना है हर किसी को ज़वाब,
ये कैसे हो, जो करे तू, उसे पता न लगे।

बावन

ठिठुरती ठण्ड में स्कूल बसों से बच्चे,
भौर्चा जीतने निकले हैं घरों से बच्चे।
विदेसी गमलों में पाएँगे स्वाद-पानी वे,
भले ही क्यों न कटें अपनी जड़ों से बच्चे।
खड़ी है सामने एक अंधी गली मुँह बाए,
करेंगे सामना अब किसके भरोसे बच्चे।
दिल-औ-दिमाग़ पे लादे हैं बोझ इतना अब,
कि बचपने में ही लगते हैं बड़ों-से बच्चे।
पकेंगे वक़्त की भट्टी में जब, तो देखेंगे,
अभी तो चाक पर हैं कच्चे घड़ों-से बच्चे।

तिरेपन

दिल के रिश्ते गाढ़े हों और बोलाचाली बनी रहे,
मांग दुआ, आँखों के आगे ये हरियाली बनी रहे।
नए चाँद की खुशियाँ ले कर ईद हमारे घर आये,
और तुम्हारे आँगन में हर रोज दिवाली बनी रहे।
शक-शुबहों के धूल भरे जाले हो जाएँ साफ जरा,
ऐसा भी क्या जब देखो तब नज़र सवाली बनी रहे।
संजीदा चेहरों को तकते-तकते सालों गुजर गए,
अब मुखड़ों पर लाली आई है तो लाली बनी रहे।
बहुत रुलाया है हम बिछुड़ों को क़मबख़्त सियासत ने,
कोई सूरत कर कुछ दिन तो अब खुशहाली बनी रहे।

चौपन

ज़माना क्यों उदास है, सितार बजने दो,

वो यहीं आस-पास है, सितार बजने दो।

सारे आलम को जो महकाए हुए है हरसूँ,

ये उसी की सुवास है, सितार बजने दो।

सुरों की बारिशें होती रहें, थमें न कभी,

जनम-जनम की प्यास है, सितार बजने दो।

ये देह, नेह, मेह सारे ही बहाने हैं,

समझ ले मिथ्या वास है, सितार बजने दो।

समा गया वो फैलकर हरेक ज़र्रे में,

अनंत तक उजास है, सितार बजने दो।

• पं. रविशंकर को विनम्र श्रद्धांजलि

पचपन

मुँदी हुई आँखें, उड़ी हुई नींदें, और तेरा ख़याल,
मेरी पसंदीदा कुछ निजी चीजें और तेरा ख़याल।
बुझा हुआ मन, लुटा हुआ धन, थरथराती हुई लौं,
तेरी यादों की जलती कंदीलें और तेरा ख़याल।
किले सभी ध्वस्त, देह अस्त-व्यस्त, जर्जर दीवारों पर,
धूल भरी, धुँधलाई चंद तस्वीरें, और तेरा ख़याल।
विस्मृत प्रारब्ध, निर्जन, निःशब्द, नितांत एकांत क्षणों में,
मर्मांतक दबी हुई दो-चार चीखें और तेरा ख़याल।

छप्पन

क़द्र की क़द्र करने वाले हों,
तो अँधेरे में भी उजाले हों.
ऐसी दुनिया का क्या करे जिसमें,
आँख पर पर्दे, मुँह पे ताले हों.
झील का दुःख भला वो क्या जाने,
जिसने पत्थर सदा उछाले हों.
यूँ तो मुमकिन नहीं लगे मुझको,
कत्लगाहों में भी शिवाले हों.
पर कहीं होंगे लोग जो अब भी,
डूबती कश्तियाँ संभाले हों.

सत्तावन

ख़ुशी से अपनी जाँघ कौन यूँ उघाड़ता है,
मगर सवाल तो अपना ज़वाब मांगता है.
ये ख़ूबसूरती अंदर से घिनौनी होगी,
बताये कोई कि ये सच है या मुग़ालता है.
खुली है अब किसी मज़लूम की ज़बान अगर,
तो खुलने दे ना उसपे पर्दा क्यूँ तू डालता है.
कहानियों में भी थोड़ा सा सच तो होता है,
ये मैं भी जानता हूँ और तू भी जानता है.
दबाके कोई कहाँ तक रखेगा सीने में,
पुराना ज़ख़्म है जो आज तलक सालता है.
खड़ी है अब जहाँ इंसाफ़ की भूखी पीढ़ी,
वहाँ मंजिल नहीं बस रास्ता ही रास्ता है.

अठावन

ख़्वाबों का हश्र टूटना है तो ख़्वाब क्यों देखती है ये दुनिया,
दुःख के पैग़ाम हमें आये दिन जाने क्यों भेजती है ये दुनिया।
दुश्मनी है तो दुश्मनों की तरह पेश आये ज़रा सलीक़े से,
नक़ाब ओढ़ के हमदर्दी का जाल क्यों फेंकती है ये दुनिया।
हम थे नादान जो अरमानों के दिल में मेले लगाये रहते थे,
आशियाँ जल गया हमारा तो हाथ क्यों सेंकती है ये दुनिया।
हाँ, हमें हो गई है अब आदत हर किसी बात पे रो देने की,
पर खिलौना बना के अश्क़ों को क्यों खेलती है ये दुनिया।

उनसठ

हम पके पात हैं कल गिरना हमारा, तय है,
हर कोई छूटेगा, हो कितना भी प्यारा तय है.
धुंध आगोश में ले लेगी उसे भी आख़िर,
आँख के सामने है जो भी नज़ारा, तय है.
रोज चिंताओं में घुलने से भला क्या होगा,
अपने बस में नहीं है वक़्त की धारा, तय है.
रोशनी बाँट दें जी भरके बुझने से पहले,
लौट आएगा मनोबल जो है हारा, तय है.
ज़िन्दगी नाम है उगते हुए सूरज का भी,
ज़िन्दगी सिर्फ़ नहीं टूटता तारा, तय है.

साठ

ख़बर नहीं ये है, जो पढ़ते ही बासी हो जाए,
ये ग़ज़ल है, सुनो तो रूह प्यासी हो जाए.
मैं हूँ अदीब, कोई बुतपरस्त आए तो,
मेरी दुआ है ये क़ाबा भी काशी हो जाए.
शहर के दंगों पर तो तब्सिरे तमाम हुए,
अमन की बात भी अब चल, ज़रा सी हो जाए.
गले मिलता हूँ मैं सबसे, ये सोचकर शायद,
उड़न छू आँखों से गहरी उदासी हो जाए.
वो एक बार मेरी ज़िन्दगी में आए तो,
अमां की रात भी ये पूर्णमासी हो जाए.

इकसठ

इस तरह मिल कि ये दिल बाग़-बाग़ हो जाए,
ऐसा भी मिलना क्या कि फूस आग हो जाए.

हथेली मेरी अगर छू ले हथेली उसकी,
महक मैं फूल की तो वो पराग हो जाए.

अषाढ़ चढ़ने लगा, देख, देहरी सावन की,
मेघ के साथ अब मल्हार राग हो जाए.

किसी के आने का संकेत है ये, शायद सच,
अभी मंडेर पे बोला है काग, हो जाए.

दिल की आवाज़ सिर्फ़ दिल को ही सुनाई दे,
ऐसा कुछ कर अभी बेबस दिमाग हो जाए.

बासठ

हर एक सवाल का उत्तर हो, जरूरी तो नहीं,
हर घड़ी साथ मुकद्दर हो, जरूरी तो नहीं.
हम अपनी पुरनमी आँखों से कह चुके सब कुछ,
हमारी आस्तीं भी तर हो, जरूरी तो नहीं.
हवा का रुख़ बदलने वाले और होते हैं,
अनाड़ियों में ये हुनर हो, जरूरी तो नहीं.
हो चुका फैसला जब पहले ही, तो आगे अब,
यह बहस रोज की खबर हो, जरूरी तो नहीं.
सीपियाँ, मोती, शंख, घोंघे क्या थे मेले में,
ये राज सब पे उजागर हो, जरूरी तो नहीं.

तिरेसठ

ये माना, उनमें बड़ी जान हुआ करती है,
समुंदरों को भी थकान हुआ करती है.
उछाल भरती हुई लहरें आसमाँ छू लें,
ये चार पल की दास्तान हुआ करती है.
शिखर पे जा के खुशी हो बुरा नहीं लेकिन,
शुरु वहीं से हर ढ़लान हुआ करती है.
जो ज़ुल्म सह के भी चुप हैं, ये भूल मत जाना,
कि उनके मुँह में भी ज़बान हुआ करती है.
वो दूसरों का दर्द अपना ही समझते हैं,
अदीबों की यही पहचान हुआ करती है.

चौंसठ

हौंसले जितने बड़े हैं, साज़िशें उनसे बड़ी,
फैंसला होता है क्या अब देखना है इस घड़ी।
एक खंजर जो रखा था कबसे गर्दन पर, उसे,
दे रही है फिर चुनौती आँसुओं की सत-लड़ी।
हर क़दम सुनसान राहें, हर क़दम दुश्वारियाँ,
एक भी साया नहीं और धूप भी ज्यादा कड़ी।
नाउम्मीदों से परे, उम्मीद भी लेकिन कहीं,
एक बच्चे की तरह है थामकर उँगली खड़ी।
देखने में ख़ूबसूरत हो भले कितनी ही पर,
ज़िन्दगी की सेज होती है सदा काँटों-जड़ी।

पैंसठ

दिल का दरिया उछालें भरने लगा,
रेत में चेहरा एक उभरने लगा।

हिचकियाँ हैं कि नहीं रुकती हैं,
क्या मुझे याद कोई करने लगा।

उफ़ ! तेरे आने की ये बेचैनी,
कितनी तेजी से दिन गुजरने लगा।

आँख में थोड़ी देर तो रहता,
ख़्वाब था तू तो क्यों बिखरने लगा।

ये तेरे नाम का ही जादू है,
लब पे आया तो जग विसरने लगा।

छिंयासठ

जरा सी आँच लगी बर्फ पानी होने लगी,
गिरह खुली तो जिंदगी सुहानी होने लगी।
उड़ा के ले गई हवाएँ बीज नफरत के,
हर एक साँस प्यार की निशानी होने लगी।
तेरा दुख दर्द जब से मिल गया मेरे दुःख में,
तेरी हर दास्तां मेरी कहानी होने लगी।
उसे गुजरना था, गुजर गया धीरे-धीरे,
वो वक़्त जिसकी धार अब पुरानी होने लगी।
भुला के सब गिले शिकवे खुशी से जी हर पल,
खुदा की, देख, तुझ पे मेहरबानी होने लगी।

सड़सठ

जिस दिन तुमसे बिछुड़ के आए,
सीने पर पत्थर रख लाए।
भरी आँख से देखा मुड़ कर,
नज़र में थे तुम नज़र न आए।
धरी रह गई सारी बातें,
बोल न फूटे, होंठ हिलाए।
कुछ तो था जो टूट गया था,
पागल मन को समझ न आए।
घर में घर को ढूँढ रहे थे,
दीवारें, सन्नाटे, साए।
रिश्तों का बस नाम हो गया,
भरम ही पाले, भरम निभाए।

अड़सठ

ये नज़्म, ये ग़ज़ल, ये गीत सिर्फ़ बहाना है,
मक़सद तो दोस्तों से, बस मिलना-मिलाना है.
कुछ देर का खेला है, बातों का ही मेला है,
फिर अपने-अपने रस्ते हम सबको ही जाना है.
सुनलें, सुनालें मन की, यह दास्ताँ जीवन की,
है रस्म ही अगर तो भी दिल से निभाना है.
कुछ लोगों को सजा है, कुछ लोगों को मजा है,
हर रोज नया चेहरा चेहरे पे लगाना है.
जाएँ किसी भी रस्ते, यूँ ही सभी भटकते,
पहुँचेंगे वहीं आख़िर में, एक ठिकाना है.
ये बेरहम समय है, टूटी हुई हर लय है,
पर शर्त ये है, फिर भी सुर-ताल में गाना है.

उनहत्तर

चल दिए हाथ छुड़ाकर, सभी जाने वाले,
अब कहाँ ढूंढ़ें हम रूठों को मनाने वाले।
कोई दरख़्त जब भी छाँह देने लगता है,
कुल्हाड़ियाँ चला देते हैं जमाने वाले।
कश्तियाँ किसकी बचीं और किसकी डूब गई,
फ़िक्र करते कहाँ तूफ़ान उठाने वाले।
यहाँ पे हादसों का दौर है कि थमता नहीं,
वहाँ पे ख़ुश हैं आँकड़ों को दिखाने वाले।
बचाके रखना अश्क़ अपनी-अपनी आँखों के,
बहुत रुलाएँगे क़मबख़्त रुलाने वाले।

सत्तर

दिलों के रास्ते दिन-रात बंद कर के लोग,
शहर में जीते हैं परछाइयों से डर के लोग।
जगा के दहशतें चुपचाप निकल जाते हैं,
बताये कोई तो आखिर हैं वो किधर के लोग।
उधर के लोगों की बरसों ख़बर नहीं आती,
फिर भी बेचैन नहीं होते क्यों इधर के लोग।
अज़ीब वक़्त है दुनिया की सारी दौलत पर,
जमा के हक यहाँ बैठे हैं चंद घर के लोग।
मुसीबतों के वक़्त जब कोई नहीं आता,
फ़रिश्ते बन के उतरते हैं दर-ब-दर के लोग।

इकहत्तर

भले दो जून की हमें न रोटी देते हैं,
हमारे शब्द जहाँ को चुनौती देते हैं.
हमें पता है ज़िन्दगी हमारी काजल है,
मग़र हमीं है जो रातों को ज्योति देते हैं.
अदीबों की ज़ुबान बंद करने की ख़ातिर,
सुना है हुक़्मरान रकमें मोटी देते हैं.
उन्हें अस्मत उतारते तो बहुत देखा है,
कहाँ हैं हाथ जो तन पर लंगोटी देते हैं.
अज़ीब वक़्त से है सामना ग़रीबों का,
वो पेट पालने को बोटी-बोटी देते हैं.

बहत्तर

सुनामी जब भी आती है तबाही छोड़ जाती है,
दिए की लौ भी आख़िर में सियाही छोड़ जाती है.
करे कोशिश कोई कितनी गुनाहों को छुपाने की,
मग़र तारीख़ एक न एक गवाही छोड़ जाती है.
ज़मीनी काम करने वाले ही कुछ काम करते हैं,
हवाबाज़ी तो झूठी वाहवाही छोड़ जाती है.
भरोसा जब जहाँ भी टूटता है लोकशाही का,
हुकूमत जाते जाते तानाशाही छोड़ जाती है.
हमारी रात-दिन कुछ सोचने की ये बुरी आदत,
मुसीबत जान पर अपनी इलाही छोड़ जाती है.

तिहत्तर

इमारत ऊँची होते ही उजाला रोक लेती है,
हमारे घर हो सूरज आने वाला, रोक लेती है.
रिवायत है अज़ब उसके यहाँ ख़ातिर-नवाज़ी की,
पहुँचता भी नहीं होंठों पे प्याला रोक लेती है.
न जाने कौनसी-ताक़त हिफ़ाज़त के बहाने से,
गले मे देखते ही कंठी-माला, रोक लेती है.
जुनूँ की हद तो देखो, ठीक पैंदा होने से पहले,
किसी भी कोख में हो मलाला, रोक लेती है.
सियासत आख़िरी दम तक न पाने देती है मंज़िल,
धरम का, जात का देकर हवाला, रोक लेती है.

चौहत्तर

उसकी मौज़ूदगी में ताज़गी-सी लगती है,
वो यहाँ होती है तो ज़िन्दगी-सी लगती है.

सारा दिन बीते भले लड़ते-झगड़ते उससे,
उसके जाते ही ग़ुमशुदा-सी ख़ुशी लगती है.

बहस का मुद्दा ढूँढ़ लेते हैं हम दोनों ही,
घर में ख़ामोशी कही क्या भली सी लगती है.

एक आदत की तरह हो गई है शामिल वो,
छूट जाए तो बड़ी बेक़ली-सी लगती है.

सफ़र में कौन कहाँ साथ छोड़ जाएगा,
सोचते ही बदन में फुरफुरी-सी लगती है.

अभी से बात अँधेरी की मगर क्या करना,
अभी तो रौशनी भरी-भरी-सी लगती है.

पिचहत्तर

तेरी मासूमियत विपदा में जब आती मेरी बच्ची,
धरा पाताल में क्यों धँस नहीं जाती मेरी बच्ची।
तुझे मैं जन्म दे कर आज अपराधी-सा बैठा हूँ,
पिता होने की मुझको शर्म है खाती मेरी बच्ची।
मेरा गुस्सा मुझे असहाय इतना कर चुका है अब,
ज़ुबाँ भी ठीक से खोली नहीं जाती मेरी बच्ची।
मुझे था क्या पता दुनिया या हैवानों का जंगल है,
जहाँ वहशत और' दहशत की है ठकुराती मेरी बच्ची।
यहाँ मैं हो गया हूँ जड़, भ्रमित, निष्कंप पत्थर-सा,
वहाँ तू दर्द की मूरत हुई जाती, मेरी बच्ची।
तू थी निष्पाप और निर्दोष, तुझ पर क्यों कहर बरपा,
भला था इससे मुझको मौत आ जाती मेरी बच्ची।

छिहत्तर

मेरे बारे में उसने जाने क्या-क्या सोचा है,
पर मुझे उसकी नीयत पर अभी भरोसा है.
उसकी रुसवाई उसके चेहरे पे झलकती है,
प्यार में ऐसा भी कभी-कभार होता है.
हँसते-हँसते मेरे आँसू भी निकल आते हैं,
चुटकुला क्या कभी दामन को यूँ भिगोता है.
एक किस्सा जो मोहब्बत से शुरु हो आखिर,
किसी तकरार पे जाकर वो खत्म होता है.
उसकी मौज़ूदगी ज़ुदा नहीं होती मुझसे,
मैं करूँ याद जब भी, सामने वो होता है.

सतहत्तर

गुनाह एक का, इल्ज़ाम क़ौम पर आए,
नज़ारा कैसा ये, हे राम! देख कर आए।
ये धरती ही है जो इतना कुछ सह लेती है,
जाने भी कौन से सबको, वो ही फिर दफ़नाए।
अज़ीब तरह से सरहद पे लोग मिलते हैं,
गले लगाते-लगाते गला ही कट जाए।
वो जिसके साथ हादसा हुआ, चुप है तो फिर,
वे कौन थे जो बेतहाशा यहाँ चिल्लाए।
दुःख की बदली का कोई आसमाँ नहीं होता,
किसे पता है वो जाकर कहाँ बरस जाए।
कोई खिड़की यहाँ इस डर से नहीं खुलती अब,
न जाने कौन सी बुरी ख़बर फिर आ जाए।

अठहत्तर

कल की बरसात ने भिगो डाला,
पुराना दाग था एक, धो डाला।
बाद मुद्दत के धूप अच्छी लगी,
बाद मुद्दत के पढ़ी मधुशाला।
याद आई, गए जमाने की एक,
नरगिसी फिल्म, वो छतरी वाला।
एक बच्चे ने मेरे अन्दर से,
खिल-खिलाकर मुझे चौंका डाला।
ज़िन्दगी फिर से ख़ुशगवार लगी,
जैसे नज़रों से हट गया जाला।

उन्यासी

शिखर पे जाते ही ढ़लान शुरू होती है,
ठहर, कि अब यहीं थकान शुरु होती है.
है मुश्किलों से भरी जिन्दगी कितनी ये समझ,
फ़रेब खा के मेरी जान, शुरू होती है.
जब इधर लोग लुभाने को खड़े हों आगे,
तभी ज़मीर की पहचान शुरु होती है.
जरूरी तो नहीं मस्ज़िद हो इबादत के लिए,
जहाँ सज़दा किया, अज़ान शुरू होती है.
निगाहें अब तो फेर लीजिये मेरी ज़ानिब,
मेरी कहानी, मेहरबान, शुरू होती है.

अस्सी

ज़ुबानें जिनकी मीठी हैं, उन्हीं को मुँह लगाते हैं,
नज़ाकत देखकर मौक़े की, सब रिश्ते निभाते हैं.
हक़ीक़त को बयाँ करना मुसीबत मोल लेना है,
ये ऐसा खतरा है जो लोग अब कम ही उठाते हैं.
सियासत हो गई है ज़िंदगी पर इस तरह हावी,
सियासत में ही जीते हैं, उसी में मारे जाते हैं.
ढुलकते हैं किसी बेबस के दामन पर कभी आँसू,
तो ऐसे लोग भी हैं देखकर जो मुस्कुराते हैं.
जमाखोरों ने जबसे गिरवी रख लीं सब जवाँ खुशियाँ,
ग़मों के बीच में जीते हुए हम गीत गाते हैं.

इक्यासी

धुँध में जब कहीं कुछ भी नज़र नहीं आता,
एक उम्मीद का दामन नहीं छोड़ा जाता।
हज़ारों बार डोर टूटती-सी लगती है,
हादसों में भी बचा रहता है कोई नाता।
बाख़बर कितना भी हो रहजनों से इंसाँ पर,
प्यार की राह में अक़्सर सुना है लुट जाता।
जंग में जीत ही केवल ख़ुशी नहीं देती,
जंग में हार का भी, है मज़ा कभी आता।
ग़ौर से देखो तो जानोगे ज़िंदगी का सफ़र,
जहाँ पे ख़त्म हो, वहीं से शुरू हो जाता।

बिंयासी

जानता हूँ कि उम्र थोड़ी है,
फिर भी उम्मीद कहाँ छोड़ी है.
कुछ दुआएँ बची हैं झोली में,
एक दौलत यही तो जोड़ी है.
भुलाऊँ कितना, भूलती ही नहीं,
दुःखों की याद भी निगोड़ी है.
मिले सुकून कहीं, इसके लिए,
जिंदगी ये कहाँ न दौड़ी है.
अभी पहाड़ खड़ा है आगे,
अभी तो एक शिला तोड़ी है.
नियति से रोज लोहा लेने में,
आखिरी साँस तक निचोड़ी है.

तिंयासी

ग़ुलों ने कुछ नया करने की अग़र ठानी है,
ख़ुशबुएँ रोकना, मौसम की बेईमानी है.
हक़ीक़तों में ख़्वाब भी कभी बदलते हैं,
ये सोचकर ही अब होने लगी हैरानी है.
जला चुके हैं हाथ अपने इतनी बार यहाँ,
ग़ले उतरती नहीं अब कोई कहानी है.
वो शख़्स जादुई चराग नहीं रखता है,
ये साफ़गोई ही उसकी बड़ी नादानी है.
इरादे नेक हैं सफ़र में यही क्या कम हैं,
अभी है दूर वो मंज़िल, जो उसे पानी है.

चौरासी

रीति-रिवाज पुराने अब भी निभा रही है माँ,
जो खोने वाला है, उसको बचा रही है माँ।
यों तो आँखों में उसके बस स्याह अँधेरे हैं,
उम्मीदों के दीपक फिर भी जला रही है माँ।
लौट-लौट कर आते हैं पंछी स्मृतियों के,
जाने कब से उनको दाने खिला रही है माँ।
मान और अपमान एक जैसे ही लगते हैं,
दो बेटों को छाती से क्यों लगा रही माँ।
चेहरे की झुर्रियों, श्वेत केशों के जंगल में,
रोज नया उत्सव जीवन का मना रही है माँ।

पिच्यासी

नदी के भाग बदलेंगे, बड़ा अच्छा इरादा है,
मगर उस सच का क्याकि काम कम और शोर ज़्यादा है.
हैं जितनी बंदिशें अब मुफ़लिसों के वास्ते ही हैं,
मुक़द्दर उनका गोया तंगहाली का लबादा है.
दिशा-मैदान को कोई जगह खाली नहीं मिलती,
चला जाता है धमकाकर, मोहल्ले का जो दादा है.
समझ में आए कैसे बादशाहों की ज़ुबाँ उसको,
शक़्ल से भी वो प्यादा है, अक़्ल से भी वो प्यादा है.
बचे हों ख़्वाब कुछ अब भी किसी की गीली आँखों में,
जला डालो, यहाँ चिंगारियों के संग बुरादा है.

छियासी

किसी भी काम में अब मन नहीं लगता,
सरलता से भरा जीवन नहीं लगता।
ये कैसी मुश्किलों का दौर है जिसमें,
हथेली पर रखा धन, धन नहीं लगता।
अगर भूले से ऊँगली थाम लूँ उसकी,
तो बचपन की तरह बचपन नहीं लगता।
उठीं हैं जब से बीचों-बीच दीवारें,
मेरा आँगन, मेरा आँगन नहीं लगता।
निभाऊँ किस तरह ऐसा कोई रिश्ता,
कहीं भी जिसमें अपनापन नहीं लगता।

सत्यासी

कुरेद देता हूँ तो एक पल भभकती हैं,
ये वो चिंगारियाँ हैं, बुझती हैं न जलती हैं.
मशाल बनने की हसरत न हुई पूरी तो,
ये गीली लकड़ियाँ रह-रह के धुआँ करती हैं.
जिन्हें इतिहास में जगह न मिली थोड़ी-सी,
वो अब भूगोल बदलने की बात करती हैं.
ग़ज़ब तो ये कि कंगूरों पे है बहस जारी,
जहाँ इमारतों की नींवें ही दरकती हैं.
हजारों ज़ख़्म रिस रहे हैं ज़िस्म पर अब भी,
कहाँ हैं वो हथेलियाँ, जो मरहम रखती हैं.

अठ्यासी

ज़बान किसकी है, अल्फ़ाज़ किसके हैं, बतला,
छुपाये हैं जो दिल में राज किसके हैं बतला।
तू इस तरह तो बोलता नहीं था पहले कभी,
ये बदले-बदले से अंदाज़ किसके हैं बतला।
ये डर है कोई या ख़्वाहिश अधूरी-सी कोई,
ज़हर बुझे ये तीर आज किसके हैं, बतला।
नज़र के साथ-साथ, सुर बदल गए तेरे,
नए मिज़ाज़ के ये साज़ किसके हैं बतला।
तेरा वुजूद सवालों के घेरे में है अब,
तेरे सिर पर सजे ये ताज किसके हैं बतला।

नवासी

तुम कहो जो, ग़ार वही सच है,
फिर, बहस की क्या ज़रूरत है.
बात हक की थी यहां होनी,
छोड़िये, अब वह भी नाहक है.
मुल्क पर, हर रोज खतरा है,
फिर भी जिंदा हैं, गनीमत है.
रोशनी-आँखों में चुभती है,
अब रही न इसकी आदत है.
लोग कहते हैं, इस बंदे को,
बस शिकायत ही शिकायत है.
हैं नज़ारे लाख पर उनमें,
अब कहाँ पहले-सी रंगत है.

नब्बे

हम ढूँढते रहते हैं कहाँ बुरा हुआ है,
उस रास्ते मे गड्ढा कहाँ खुदा हुआ है.
हम क्या करें आदत से ही लाचार हो गए,
अब कौन सोचे किसका कहाँ भला हुआ है.
है काम हमारा बस आईना दिखाना,
परवाह किसे उसका भी सच बँटा हुआ है.
वैसे तो एक ही बिसात के हैं हम प्यादे,
यह बात और है ये राज ढँका हुआ है.
कुछ पेट का सवाल, कुछ भविष्य के सपने,
कहते हैं हम वही जो पहले लिखा हुआ है.
आदर्शों की तो बात ही करें न अब हुज़ूर,
ये जुमला आजकल बहुत ही पिटा हुआ है.
जो क़लम ठठेरे की थी, सोने की हो गई,
इतिहास में,कहिये, कहाँ पे लिखा हुआ है.